

वास्तु शास्त्र और निर्माण कार्यों में अग्निवास तथा दिशा शूल विचार का महत्व

(एक आलोचनात्मक-विश्लेषणात्मक शोध-समीक्षा: शास्त्रीय स्रोत, गणितीय-जलवायवीय विश्लेषण एवं बहु-दृष्टिकोणीय मूल्यांकन)

Parhlad Singh Ahluwalia, Shodh Prakashan, Hisar, Haryana

सारांश (Abstract)

भारतीय निर्माण-परंपरा में भूमि-चयन से लेकर गृह-प्रवेश तक प्रत्येक चरण को दिशा, काल और देवता के त्रिविध संदर्भ में देखा गया है। इस संदर्भ में दो अवधारणाएँ — होम-यज्ञादि कर्मों से जुड़ा अग्निवास तथा यात्रा-प्रस्थान से जुड़ा दिशा-शूल — आज भी भवन-निर्माण के शुभारंभ, भूमि-पूजन, शिलान्यास तथा गृह-प्रवेश के मुहूर्त-निर्धारण में निर्णायक मानी जाती हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र इन दोनों अवधारणाओं का शास्त्रीय स्रोतों, उपलब्ध आधुनिक शोध-साहित्य तथा गणितीय-जलवायवीय विश्लेषण के आधार पर आलोचनात्मक अध्ययन करता है। अध्ययन PRISMA-ScR की पारदर्शिता-भावना पर आधारित एक विवरणात्मक-विश्लेषणात्मक समीक्षा (scoping-type critical review) है, जिसमें संस्कृत मूल-ग्रंथों, वास्तु-इतिहास, जलवायु-अनुकूल भवन-डिजाइन, इनडोर वायु-गुणवत्ता तथा अंधविश्वास के मनोविज्ञान से संबंधित स्रोतों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। मौलिक गणना से यह पाया गया कि अग्निवास के सूत्र के अंतर्गत 210 वार-तिथि संयोगों में से 105 (50.0%) में अग्नि का वास पृथ्वी पर, 53 (25.2%) में आकाश में तथा 52 (24.8%) में पाताल में आता है; अर्थात् यह सूत्र लगभग समान-वितरण वाली चक्रीय समय-सारणी रचता है। इसी प्रकार दिशा-शूल का नियम प्रत्येक दिन चार प्रमुख दिशाओं में से ठीक एक दिशा को निषिद्ध करता है, अतः किसी भी यादृच्छिक दिन किसी दी हुई दिशा के निषिद्ध होने की संभावना 25% रहती है। विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि वास्तु के दिशा-संबंधी नियमों (जैसे ईशान की खुली-हल्की रचना, आग्नेय में पाकशाला) के पीछे सूर्य-पथ, वायु-प्रवाह तथा अग्नि-सुरक्षा के व्यावहारिक तर्क अंशतः खोजे जा सकते हैं, किंतु अग्निवास तथा दिशा-शूल जैसे ज्योतिषीय-मुहूर्तगत नियमों के भवन की संरचनात्मक गुणवत्ता, सुरक्षा या निवासियों के स्वास्थ्य पर कारणात्मक प्रभाव को सिद्ध करने वाला कोई नियंत्रित अनुभवजन्य प्रमाण उपलब्ध साहित्य में नहीं मिलता। इनकी निरंतरता का अधिक संतोषजनक स्पष्टीकरण सांस्कृतिक-अनुष्ठानिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कार्य-प्रणालियों में मिलता है। शोध-पत्र शास्त्र-सम्मान तथा वैज्ञानिक-अनुशासन के बीच संतुलित, प्रमाण-आधारित दृष्टि की अनुशंसा करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): वास्तु शास्त्र; अग्निवास; दिशा-शूल; मुहूर्त; निर्माण कार्य; जलवायु-अनुकूल डिजाइन; भारतीय ज्ञान परंपरा; आलोचनात्मक समीक्षा

1. प्रस्तावना

मानव सभ्यता में आश्रय केवल भौतिक आवश्यकता नहीं रहा; वह विश्व-दृष्टि का स्थापत्य-रूप भी रहा है। भारतीय परंपरा में गृह-निर्माण को संस्कार की श्रेणी में रखा गया, और इसीलिए भूमि के चयन, नींव खोदने, स्तंभ-स्थापन तथा द्वार-निर्माण जैसे प्रत्येक कृत्य को शुभ काल और शुभ दिशा से जोड़ने के नियम बने। ऋग्वेद में गृह के अधिष्ठाता देवता वास्तोष्पति का आवाहन मिलता है:[1]

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवानः।

(ऋग्वेद 7.54.1; पाठ-मिलान हेतु संदर्भ-संख्या देखें)

यह मंत्र संकेत करता है कि गृह की चिंता वैदिक काल से ही निवास की निरोगता (अनमीव) और सुखद प्रवेश (स्वावेश) से जुड़ी रही है। परवर्ती काल में मत्स्यपुराण, बृहत्संहिता, समरांगणसूत्रधार, मयमत, मानसार तथा विश्वकर्मप्रकाश जैसे ग्रंथों में वास्तु-विद्या का व्यवस्थित शास्त्र विकसित हुआ।[2-6] मत्स्यपुराण में वास्तुशास्त्र के अठारह उपदेशकों की जो सूची मिलती है, वह इस ज्ञान-परंपरा की बहुकेंद्रीयता का संकेत देती है:[2]

*भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा। नारदो नमजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः॥ ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग
एव च वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती॥ अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।*

(मत्स्यपुराण, अध्याय 252 के प्रचलित पाठ के अनुसार; मूल संस्करण से मिलान आवश्यक)

वास्तु केवल भवन-नक्शे का नियम-संग्रह नहीं है। वह भूमि-परीक्षा, दिक्-निर्धारण, पद-विन्यास (मण्डल), द्वार-स्थापन तथा मुहूर्त-चयन का समन्वित तंत्र है।[7,8] इसी तंत्र में काल-शुद्धि का प्रश्न ज्योतिष की मुहूर्त-शाखा से जुड़ता है, जिसके प्रामाणिक ग्रंथों में मुहूर्तचिन्तामणि का स्थान प्रमुख है।[9,10] अग्निवास का विचार वस्तुतः मुहूर्त-शास्त्र का अंग है और होम, यज्ञ तथा वास्तु-शांति जैसे कर्मों के लिए अग्नि के निवास-स्थान (पृथ्वी, आकाश अथवा पाताल) का निर्णय करता है। दिशा-शूल का विचार यात्रा-शास्त्र का अंग है, जो सप्ताह के वार के आधार पर किसी विशेष दिशा में प्रस्थान को वर्ज्य बताता है।[9,11] निर्माण-कर्म में इन दोनों का प्रयोग इसलिए होता है कि भूमि-पूजन और गृह-प्रवेश वास्तु-शांति होम के बिना अपूर्ण माने जाते हैं, और इन कर्मों के लिए व्यक्ति को साइट पर आना-जाना, सामग्री लाना तथा परिवार का स्थानांतरण करना पड़ता है।

आधुनिक समाज में वास्तु की लोकप्रियता तेज़ी से बढ़ी है, किंतु इसके साथ एक गंभीर बौद्धिक समस्या भी जुड़ी है। जिन विद्वानों ने वास्तु के समकालीन प्रयोगों का अध्ययन किया, उनका निष्कर्ष है कि लोकप्रिय वास्तु अनेक बार शास्त्रीय ग्रंथों की आत्मा से भिन्न दिशा में चला गया है।[8,12] एक ओर इसे अंधविश्वास कहकर पूरी तरह खारिज करने की प्रवृत्ति है; दूसरी ओर प्रत्येक नियम को 'विज्ञान-सिद्ध' बताने की प्रवृत्ति भी है। दोनों ही छोर प्रमाण-आधारित विमर्श के लिए बाधक हैं। गीता का वचन शास्त्र को कार्य-अकार्य की व्यवस्था में प्रमाण मानता है:[13]

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ (गीता 16.24)

किंतु 'शास्त्र को प्रमाण' मानने का अर्थ यह नहीं कि उसके प्रत्येक लौकिक-फलकथन की अनुभवजन्य परीक्षा से इनकार कर दिया जाए। आधुनिक शोध की भूमिका ठीक यहीं आती है: शास्त्रीय कथन के स्रोत-निर्धारण (textual criticism), उसकी तर्क-संगति (internal logic) तथा उसके अनुभवजन्य परिणामों (empirical outcomes) को अलग-अलग परखना।

इस पत्र की मौलिकता तीन स्तरों पर है। प्रथम, यह अग्निवास तथा दिशा-शूल को एक ही विश्लेषणात्मक चौखट में रखकर उनके पाठ-आधार, गणितीय संरचना और अनुभवजन्य स्थिति की तुलना करता है। द्वितीय, यह इन नियमों की संख्यात्मक विशेषताओं (जैसे 210-संयोग चक्र का वितरण) की मौलिक गणना प्रस्तुत करता है। तृतीय, यह वास्तु के दिशा-संबंधी नियमों में विद्यमान जलवायवीय तर्क को मुहूर्तगत नियमों से अलग करके दिखाता है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि कौन-से दावे परीक्षण-योग्य हैं और कौन-से केवल आस्था-क्षेत्र में आते हैं। भारतीय संस्कारों और संस्कृति के समाजशास्त्रीय अध्ययन यह संकेत देते हैं कि अनुष्ठानिक-व्यवहार सांस्कृतिक निरंतरता और सामूहिक पहचान के वाहक होते हैं, [14,15] और इसी पृष्ठभूमि में यह देखना आवश्यक है कि मुहूर्त-नियम केवल तकनीकी निर्णय नहीं, सांस्कृतिक अभ्यास भी हैं।

2. शोध-समस्या, प्रश्न एवं परिकल्पनाएँ

शोध-समस्या यह है कि निर्माण-कार्यों में अग्निवास तथा दिशा-शूल का जो व्यापक व्यावहारिक प्रयोग होता है, उसका शास्त्रीय आधार क्या है, उसकी आंतरिक संरचना क्या कहती है, और क्या उपलब्ध शोध-साक्ष्य उसके भवन-परिणामों से संबंध की पुष्टि करते हैं।

शोध-प्रश्न इस प्रकार निर्धारित किए गए: (क) अग्निवास तथा दिशा-शूल की शास्त्रीय परिभाषा और गणना-विधि क्या है? (ख) इन नियमों की गणितीय संरचना क्या वितरण उत्पन्न करती है? (ग) वास्तु के दिशा-संबंधी नियमों में किन तत्त्वों के लिए जलवायवीय या सुरक्षा-संबंधी तर्क उपलब्ध हैं? (घ) अनुभवजन्य साहित्य इन नियमों के प्रभाव के विषय में क्या कहता है? (ङ) इनकी सामाजिक-मनोवैज्ञानिक भूमिका क्या है?

इन प्रश्नों के लिए तीन कार्य-परिकल्पनाएँ रखी गईं। H1: वास्तु के कुछ दिशा-नियम (ईशान की खुली रचना, पूर्वाभिमुख प्रकाश, आग्नेय में पाकशाला) में आंशिक पर्यावरणीय तर्क खोजा जा सकता है। H2: अग्निवास तथा दिशा-शूल के भवन-गुणवत्ता, सुरक्षा या स्वास्थ्य-परिणामों पर कारणात्मक प्रभाव का नियंत्रित अनुभवजन्य प्रमाण उपलब्ध नहीं है। H3: इन नियमों की निरंतरता का प्रमुख कारण सांस्कृतिक-अनुष्ठानिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्य-प्रणालियाँ हैं।

शोध के उद्देश्य हैं: शास्त्रीय स्रोत-सामग्री का क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण; गणितीय विश्लेषण; समीक्षित शोधों का तुलनात्मक सार; बहु-दृष्टिकोणीय मूल्यांकन; तथा भावी शोध के लिए परीक्षण-योग्य प्रस्ताव।

3. शोध-पद्धति

3.1 शोध-अभिकल्प

यह अध्ययन विवरणात्मक-विश्लेषणात्मक समीक्षा है, जिसकी रिपोर्टिंग-संरचना PRISMA 2020 तथा उसके स्कोपिंग-रिव्यू संस्करण PRISMA-ScR की पारदर्शिता-भावना से निर्देशित है। [16,17] स्कोपिंग-समीक्षा की विधि में प्रश्न की पहचान,

प्रासंगिक स्रोतों की पहचान, चयन, आँकड़ों का सारणीकरण तथा परिणामों का संकलन-विश्लेषण शामिल होता है,[18] और वही क्रम यहाँ अपनाया गया। चूँकि वास्तु-मुहूर्त का विषय भारतीय भाषाओं के प्राथमिक ग्रंथों पर आधारित है, इसलिए पारंपरिक चिकित्सा-समीक्षाओं की तरह केवल डेटाबेस-खोज पर्याप्त नहीं मानी गई; शास्त्रीय ग्रंथों के संस्करणों को 'प्राथमिक स्रोत' तथा आधुनिक शोध को 'द्वितीयक स्रोत' की श्रेणी में रखा गया।

3.2 पात्रता-मानदंड

समावेशन के मानदंड: (i) वर्ष 2024 या उससे पूर्व प्रकाशित स्रोत; (ii) वास्तु, मुहूर्त, भारतीय स्थापत्य-सिद्धांत, जलवायु-अनुकूल डिजाइन, इनडोर वायु-गुणवत्ता, अथवा अंधविश्वास/अनुष्ठान के मनोविज्ञान से सीधा संबंध; (iii) संस्कृत मूल अथवा मान्य संपादित संस्करण, या सहकर्मी-समीक्षित/प्रतिष्ठित प्रकाशक द्वारा प्रकाशित सामग्री। अपवर्जन के मानदंड: (i) 2025 या उसके पश्चात के स्रोत; (ii) बिना स्रोत की वेबसाइट-सामग्री, ज्योतिष-सेवा विज्ञापन तथा सोशल मीडिया-पोस्ट; (iii) ऐसे स्रोत जिनका अग्निवास, दिशा-शूल, वास्तु-दिशा-सिद्धांत अथवा उनकी परीक्षण-विधियों से कोई संबंध न हो।

उपयोगकर्ता द्वारा संलग्न संदर्भ-सूची की जाँच में पाया गया कि उसकी अधिकांश प्रविष्टियाँ 2025–2026 की हैं तथा विषयगत रूप से योग, शिक्षा-नीति, विधि और समाजशास्त्र से संबंधित हैं; अतः वे इस पत्र की समय-सीमा तथा विषय-शर्तों पर खरी नहीं उतरतीं। केवल वे ही प्रविष्टियाँ ली गईं जो 2024 या उससे पूर्व की थीं और जिनका शीर्षक-स्तर पर संस्कार-संस्कृति, शोध-नैतिकता अथवा मौलिकता-जाँच से प्रासंगिक संबंध था।[14,15,19–21]

3.3 पहचान, छानबीन एवं समावेशन

स्रोतों की पहचान तीन रूपों में की गई: शास्त्रीय संस्करण (मत्स्यपुराण, बृहत्संहिता, समरांगणसूत्रधार, मयमत, मानसार, मुहूर्तचिन्तामणि, विश्वकर्मप्रकाश), स्थापत्य-इतिहास एवं सिद्धांत की द्वितीयक रचनाएँ, तथा प्राकृतिक-विज्ञान और सामाजिक-मनोविज्ञान के आधारभूत शोध। प्रत्येक स्रोत का वर्गीकरण उसकी भूमिका (पाठ-आधार, सैद्धांतिक व्याख्या, जलवायवीय-डेटा, स्वास्थ्य-डेटा, मनोवैज्ञानिक-सिद्धांत, तुलनात्मक-परंपरा) के आधार पर किया गया।

इस पत्र के लेखन के समय किसी बाह्य डेटाबेस (Scopus, Web of Science, PubMed) में नई, पंजीकृत खोज-रणनीति नहीं चलाई गई है। इसलिए स्रोत-प्रवाह के किसी काल्पनिक आँकड़े (जैसे 'X रिकॉर्ड खोजे गए, Y हटाए गए') को यहाँ प्रस्तुत नहीं किया गया। यदि पत्र को प्रकाशन हेतु भेजा जाए, तो लेखक को डेटाबेस-खोज चलाकर वास्तविक PRISMA प्रवाह-आरेख जोड़ना चाहिए; यही शोध-नैतिकता की माँग है।[20]

3.4 आँकड़ों का विश्लेषण

तीन प्रकार का विश्लेषण किया गया। (क) गुणात्मक पाठ-विश्लेषण: ग्रंथों के कथनों का वर्गीकरण। (ख) गणितीय विश्लेषण: अग्निवास-सूत्र के 30 तिथियों तथा 7 वारों के कुल 210 संयोगों की गणना तथा दिशा-शूल की प्रायिकता का निर्धारण। (ग) खगोलीय गणना: सूर्योदय की दिगंश (azimuth) तथा मध्याह्न-उन्नतांश के लिए मानक गोलीय-त्रिकोणमिति का प्रयोग। अक्षांश-आधारित सरल सूत्र $\cos A = \sin \delta / \cos \phi$ से सूर्योदय-दिगंश उत्तर से मापा गया, जहाँ δ सूर्य की क्रांति तथा ϕ स्थान का अक्षांश है; ग्रीष्म-अयनांत पर $\delta = +23.44^\circ$, विषुव पर 0° तथा शीत-अयनांत पर -23.44° लिया गया।

3.5 शोध-नैतिकता एवं मौलिकता

अध्ययन में मानव-प्रतिभागी नहीं हैं, अतः संस्थागत नैतिक समिति की स्वीकृति आवश्यक नहीं थी, किंतु शोध में पारदर्शिता, स्रोत-सत्यापन तथा अतिदावे से बचाव के सामान्य नैतिक सिद्धांत का पालन किया गया। [20] पत्र का पाठ मौलिक भाषा में लिखा गया है और सभी बाह्य कथनों को संख्यात्मक उद्धरणों से जोड़ा गया है; फिर भी प्रकाशन से पूर्व iThenticate/Turnitin जैसे किसी मान्य उपकरण से समानता-जाँच कराना उचित होगा। [21]

4. अग्निवासः शास्त्रीय आधार, गणना-विधि और निर्माण-कर्म में प्रयोग

4.1 अवधारणा

अग्निवास का अर्थ है किसी दिए गए काल में अग्नि-देवता के निवास-स्थान का निर्धारण। वैदिक कर्मकांड में अग्नि को देवताओं का मुख और हविष्य-वाहक माना गया है; ऋग्वेद का आरंभ ही अग्नि-स्तुति से होता है: [1]

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। (ऋग्वेद 1.1.1)

जब कर्ता होम करता है, तो आहुति का फल इस पर निर्भर बताया गया कि उस समय अग्नि कहाँ 'वास' कर रही है। मुहूर्त-ग्रंथों की परंपरा में पृथ्वी पर अग्नि-वास सुखदायक, आकाश में वास पीड़ादायक तथा पाताल में वास धन-हानि-कारक माना गया है। [9,11] निर्माण-कर्म से संबंध इस प्रकार बनता है कि वास्तु-शांति होम, भूमि-पूजन-होम, शिलान्यास-हवन तथा गृह-प्रवेश-हवन जैसे कर्मों में अग्नि-स्थापना होती है, और परंपरा इन कर्मों के लिए अग्निवास देखने का निर्देश देती है।

यह भेद आवश्यक है कि अग्निवास की गणना केवल होम-कर्म पर लागू होती है, ईंट-गारे के कार्य पर नहीं। अनेक आधुनिक वास्तु-सलाहकार इसे 'निर्माण आरंभ करने की तिथि' पर सीधे लागू कर देते हैं, जो मूल प्रयोग-क्षेत्र का विस्तार है; शास्त्रीय स्रोतों में निर्माण-आरंभ का मुहूर्त प्रायः नक्षत्र, तिथि, वार, लग्न तथा मास-निर्णय से संबंधित अलग नियमों से आता है। [9,11] इसका समकालीन अभ्यास पर महत्वपूर्ण प्रभाव है, क्योंकि अनेक निर्माता 'अग्निवास अशुभ' होने पर संपूर्ण निर्माण-कार्य टाल देते हैं, जबकि स्रोत-विश्लेषण इसे मुख्यतः अग्नि-कर्म के सहायक नियम के रूप में प्रस्तुत करता है।

4.2 गणना-सूत्र

प्रचलित पाठ-परंपरा में सूत्र का आरंभ इस अर्ध-पंक्ति से उद्धृत किया जाता है:

सैका तिथिर्वारयुता कृतासा...

(मुहूर्तचिन्तामणि की परंपरा के अनुसार प्रचलित पाठ; शेष पंक्ति तथा पाठ-भेद के लिए उद्धृत संस्करण से मिलान आवश्यक) [9]

इसका आशय है: शुक्ल-प्रतिपदा से गिनी गई तिथि-संख्या में एक जोड़ें, उसमें रविवार से गिने गए वार की संख्या (रवि=1, सोम=2, ..., शनि=7) जोड़ें, और योग को चार से भाग दें। शेषफल 0 या 3 आए तो अग्नि का वास पृथ्वी पर, शेषफल 1 आए तो आकाश में तथा शेषफल 2 आए तो पाताल में माना जाता है। कृष्ण-पक्ष की तिथियों को 16 से 30 तक गिना जाता है। उदाहरण: शुक्ल पंचमी (तिथि-संख्या 5) यदि गुरुवार (वार-संख्या 5) को हो, तो $(5 + 1 + 5) = 11$; 11 को 4 से भाग देने पर शेष 3 आता है; अतः अग्नि का वास पृथ्वी पर होगा और परंपरा के अनुसार होम-कर्म सुखप्रद माना जाएगा।

इस सूत्र की विशेषता यह है कि यह पूर्णतः चक्रीय (modular) है, इसमें किसी प्रेक्षण-आधारित चर (जैसे ऋतु, अक्षांश या मौसम) का प्रवेश नहीं है। इस कारण इसकी भविष्यवाणी-शक्ति का परीक्षण करना सरल है, बशर्ते कि परिणाम-चर परिभाषित हों; यह बिंदु अनुभाग 7 और 9 में उठाया गया है।

4.3 निर्माण-परंपरा में भूमिका

निर्माण-कर्म के संदर्भ में अग्निवास की भूमिका तीन रूपों में दिखती है। प्रथम, वह 'काल-छन्नी' की भूमिका निभाता है: अनेक तिथि-वार संयोगों में से कुछ को शुभ मानकर शेष को छोड़ना। द्वितीय, वह अनुष्ठान को सार्वजनिक घटना बनाता है, क्योंकि पुरोहित, परिवार और पड़ोस की उपस्थिति में मुहूर्त का निर्णय सुनाया जाता है। तृतीय, वह उत्तरदायित्व का सामाजिक-वितरण करता है: यदि कार्य सफल हो तो मुहूर्त का श्रेय, और विफल हो तो 'काल' का दोष। संस्कार तथा सांस्कृतिक-विकास पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से लिखे गए अध्ययन इस ओर संकेत करते हैं कि भारतीय समाज में संस्कार सामुदायिक सहमति और मूल्य-संचरण के माध्यम हैं, [14,19] जो अग्निवास जैसे नियमों की सामाजिक भूमिका को समझने में उपयोगी चौखट प्रदान करते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि अग्निवास के नियम में कोई 'वैज्ञानिक' तत्त्व है; इसका अर्थ केवल यह है कि उसका सामाजिक कार्य (function) है, और सामाजिक कार्य को अनुभवजन्य रूप से अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है।

5. दिशा-शूल: शास्त्रीय आधार और विश्लेषण

5.1 अवधारणा

दिशा-शूल का शाब्दिक अर्थ है 'दिशा का काँटा', अर्थात् सप्ताह के किसी वार को किसी विशेष दिशा में प्रस्थान करने से पीड़ा या विघ्न की मान्यता। परंपरा के अनुसार सोमवार तथा शनिवार को पूर्व दिशा, मंगलवार तथा बुधवार को उत्तर दिशा, गुरुवार को दक्षिण दिशा तथा शुक्रवार एवं रविवार को पश्चिम दिशा में यात्रा निषिद्ध मानी जाती है। [9,11] इसका लोक-प्रचलित सार संस्कृत में इस प्रकार रखा जा सकता है (यह लेखकीय संक्षेपण है, मूल श्लोक नहीं):

शनौ सोमे प्राची निषिद्धा, गुरौ याम्या, भृगौ रवौ प्रतीची, कुजे बुधे उदीची।

आशय यह है कि प्रत्येक वार का एक निषिद्ध-दिशा-युग्म बनता है, और चारों प्रमुख दिशाएँ सप्ताह के सात वारों में बँट जाती हैं (पूर्व, उत्तर और पश्चिम में दो-दो वार, दक्षिण में एक वार)। चित्र 1 इस व्यवस्था को आठ दिशाओं, उनके दिक्पालों तथा वार-आधारित शूल के साथ प्रदर्शित करता है।

चित्र 1 : अष्ट-दिशा, दिक्पाल एवं वार-आधारित दिशा-शूल का योजनात्मक आरेख



(लाल अक्षर: उस वार को उस दिशा में प्रस्थान-निषेध। आरेख लेखक द्वारा निर्मित।)

5.2 निर्माण-कर्म में प्रयोग का स्वरूप

दिशा-शूल शास्त्रीय रूप में यात्रा का नियम है। निर्माण के संदर्भ में उसका प्रयोग परंपरागत व्याख्या से आगे बढ़ा हुआ दिखता है: भूमि-क्रय हेतु प्रस्थान, भूमि-परीक्षण, शिलान्यास-स्थल पर गमन, सामग्री-क्रय की यात्रा तथा परिवार का नए गृह में स्थानांतरण — इन सब में दिन के अनुसार दिशा-शूल देखा जाता है। मूल ग्रंथों में निर्माण-विशिष्ट विस्तार सीमित है, अतः यह प्रयोग-क्षेत्र का परंपरागत विस्तार है; ऐसा मानना सुरक्षित है कि उसकी बाध्यता शास्त्रीय से अधिक सामाजिक-व्यावहारिक है।[8,11]

परिहार (निषेध से बचाव) की व्यवस्था भी लोक-परंपरा में मिलती है, जैसे विशेष खाद्य-प्रयोग अथवा दिशा-परिवर्तन द्वारा प्रस्थान का विधान। ये परिहार दर्शाते हैं कि परंपरा स्वयं निषेध को निरपेक्ष नहीं मानती, बल्कि उसे अनुकूलनीय नियम के रूप में देखती है।

5.3 आंतरिक संरचना का विश्लेषण

मानक नवग्रह-दिक् संबंध में सूर्य पूर्व, शुक्र आग्नेय, मंगल दक्षिण, राहु नैऋत्य, शनि पश्चिम, चंद्र वायव्य, बुध उत्तर तथा गुरु ईशान दिशा के कारक माने जाते हैं। इसकी तुलना दिशा-शूल से करने पर एक रोचक संरचना दिखती है। रविवार का शूल पश्चिम में है, जो सूर्य की दिशा (पूर्व) के ठीक विपरीत है; मंगलवार का शूल उत्तर में है, जो मंगल की दिशा (दक्षिण) के विपरीत है; शनिवार का शूल पूर्व में है, जो शनि की दिशा (पश्चिम) के विपरीत है। अर्थात् तीन वारों (सूर्य, मंगल, शनि) में 'वार-स्वामी की दिशा के

विपरीत' का सिद्धांत लागू होता है। किंतु बुधवार का शूल बुध की ही दिशा (उत्तर) में है, तथा सोमवार, गुरुवार और शुक्रवार के शूल अपने-अपने ग्रह की दिशा के ठीक विपरीत नहीं हैं। इस प्रकार सात में से केवल तीन वार (लगभग 43%) इस सरल सममिति का पालन करते हैं, और चार वार नहीं। यह अवलोकन इस परिकल्पना को कमजोर करता है कि दिशा-शूल किसी एकल, सुसंगत ग्रह-दिक् तर्क से व्युत्पन्न है; वह संभवतः अलग-अलग परंपराओं के संकलन का परिणाम है, जैसा कि ज्योतिष-साहित्य के इतिहास में अनेक नियमों के विषय में देखा गया है।[10]

एक और संरचनात्मक तथ्य यह है कि प्रत्येक दिन ठीक एक ही दिशा निषिद्ध होती है, अतः चार प्रमुख दिशाओं में से किसी भी यादृच्छिक दिशा के किसी भी यादृच्छिक दिन निषिद्ध होने की संभावना $(2+2+1+2)/(7 \times 4) = 7/28 = 25\%$ होती है। इसका व्यावहारिक अर्थ है कि निषेध ऐसा कठोर नहीं कि कार्य-योजना असंभव हो जाए; तीन अन्य दिशाएँ सदा खुली रहती हैं।

6. संबंधित शोध-समीक्षाएँ, उनके परिणाम तथा निहितार्थ

उपलब्ध साहित्य को विषय के अनुसार पाँच समूहों में रखकर देखा गया: (क) शास्त्रीय ग्रंथ तथा उनके अनुवाद एवं व्याख्याएँ; (ख) स्थापत्य-इतिहास एवं वास्तु-सिद्धांत की आलोचनात्मक रचनाएँ; (ग) जलवायु-अनुकूल भवन-डिज़ाइन का विज्ञान; (घ) पाकशाला-धुएँ तथा वायु-गुणवत्ता का स्वास्थ्य-साहित्य; और (ङ) विश्वास, अनुष्ठान और अंधविश्वास का मनोविज्ञान। सारणी 1 इन स्रोतों का सार, उनके मुख्य निष्कर्ष तथा इस शोध के लिए निहितार्थ देती है।

सारणी 1: समीक्षित प्रमुख स्रोतों का सार, मुख्य निष्कर्ष एवं निहितार्थ

क्र.	स्रोत (वर्ष)	अध्ययन का प्रकार / क्षेत्र	मुख्य निष्कर्ष / प्रतिपादन	इस शोध के लिए निहितार्थ
1	क्रामरिश (1946) [7]	मंदिर-वास्तु का ऐतिहासिक-सैद्धांतिक अध्ययन	वास्तुपुरुष-मण्डल को दिशा-देवता संबंध के ब्रह्मांडीय आरेख के रूप में विश्लेषित किया	दिशा-देवता संबंध की शास्त्रीय पृष्ठभूमि
2	बाप्ना (2000) [12]	स्थापत्य-सिद्धांत की आलोचना	मण्डल को 'नियामक उपकरण' मानना अतिसरलीकरण; वास्तविक भवनों में भूमिका प्रमाणित करना कठिन	शास्त्र और व्यवहार के अंतर की चेतावनी
3	चक्रवर्ती (1998) [8]	समकालीन वास्तु-प्रयोग का अध्ययन	लोकप्रिय वास्तु शास्त्रीय स्रोतों की पुनर्व्याख्या है और अनेक बार उनसे भिन्न	सलाहकारों के दावों की पाठ-आधारित जाँच आवश्यक
4	सचदेव-टिलोटसन (2002) [22]	जयपुर का नगर-इतिहास	शिल्पशास्त्रीय विचार राजकीय एवं भौगोलिक कारकों के साथ मिलकर प्रयुक्त हुए	वास्तु-निर्णय बहुकारकीय था
5	ओल्गे (1963) [23]	जैव-जलवायवीय डिज़ाइन	इष्टतम भवन-दिशा जलवायु के अनुसार बदलती है	दिशा-नियम सार्वभौमिक नहीं, क्षेत्र-विशिष्ट
6	गिवोनी (1969) [24]	ऊष्मीय आराम एवं भवन-डिज़ाइन	जलवायु-अनुकूल डिज़ाइन का व्यवस्थित ढाँचा प्रस्तुत	दिशा-तर्क की जाँच हेतु मापदंड
7	बंसल-मिंके (1988) [25]	भारत के जलवायु-क्षेत्र	देश को पाँच जलवायु-क्षेत्रों में वर्गीकृत	क्षेत्र-विशिष्ट विश्लेषण की

क्र.	स्रोत (वर्ष)	अध्ययन का प्रकार / क्षेत्र	मुख्य निष्कर्ष / प्रतिपादन	इस शोध के लिए निहितार्थ
				आवश्यकता
8	स्मिथ एवं अन्य (2004) [26]	इनडोर वायु-प्रदूषण की समीक्षा	टोस-ईंधन के धुएँ का स्वास्थ्य-जोखिमों से संबंध	पाकशाला में ईंधन एवं संवातन प्रमुख
9	बालकृष्णन एवं अन्य (2013) [27]	भारत में घरेलू PM _{2.5} का मापन एवं मॉडलन	टोस-ईंधन प्रयोग वाले घरों में प्रदूषण-स्तर अधिक	पाकशाला-स्थान से अधिक ईंधन-प्रकार निर्णायक
10	निकर्सन (1998) [28]	मनोविज्ञान की समीक्षा	पुष्टि-पक्षपात: पूर्व-मान्यता की पुष्टि करने वाले प्रमाणों को अधिक महत्व	मुहूर्त की 'सफलता-कथाओं' की व्याख्या
11	रिज़न (2016) [29]	प्रयोगात्मक मनोविज्ञान	तर्क से अस्वीकृत अंधविश्वासों के प्रति भी सहज झुकाव	संशयी व्यक्तियों में भी अनुष्ठान-पालन
12	माक-एन.जी. (2005) [30]	वास्तुकारों का सर्वेक्षण (फ़ेंग-शुई)	पेशेवरों में मिश्रित धारणा	तुलनात्मक सांस्कृतिक आयाम
13	पिंग्री (1981) [10]	ज्योतिष-साहित्य का इतिहास	ज्योतिष-साहित्य की विधाओं एवं ग्रंथ-परंपरा का ऐतिहासिक सर्वेक्षण	मुहूर्त-ग्रंथों की साहित्यिक स्थिति

स्रोत: लेखक द्वारा संकलित।

6.1 शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक साहित्य का सार

स्टेला क्रामरिश ने मंदिर-वास्तु में वास्तुपुरुष-मण्डल को ब्रह्मांडीय-आरेख के रूप में विश्लेषित किया और दिशा तथा देवता के संबंध को शास्त्रीय स्थापत्य की धुरी माना।[7] इसके विपरीत, सास्वत बाप्पना ने तर्क दिया कि मण्डल को भारतीय स्थापत्य के 'नियामक उपकरण' के रूप में प्रस्तुत करना अतिसरलीकरण है और वास्तविक भवनों में उसकी रूपांकन-भूमिका प्रमाणित होना कठिन है।[12] विभूति चक्रवर्ती ने समकालीन वास्तु-प्रयोग का अध्ययन करते हुए दिखाया कि आधुनिक लोकप्रिय वास्तु शास्त्रीय स्रोतों की पुनर्व्याख्या है और उससे अनेक बार भिन्न है।[8] जयपुर नगर-निर्माण पर सचदेव और टिलोटसन का कार्य दिखाता है कि शिल्पशास्त्रीय विचारों का प्रयोग तब भी राजकीय, आर्थिक और भौगोलिक कारणों के साथ मिलकर हुआ, अर्थात् वास्तु निर्णय निरपेक्ष नहीं, बहुकारकीय था।[22] इन सब स्रोतों से एक सामान्य निष्कर्ष निकलता है कि शास्त्र और व्यवहार के बीच अंतर है, और इस अंतर को समझे बिना किसी वास्तु-नियम का मूल्यांकन अपूर्ण रहेगा।

6.2 जलवायु-विज्ञान संबंधी साहित्य का सार

विक्टर ओल्गे ने जैव-जलवायवीय डिज़ाइन में दिखाया कि भवन की इष्टतम दिशा जलवायु के अनुसार बदलती है।[23] गिवोनी ने ऊष्मीय आराम तथा भवन-डिज़ाइन के संबंध को व्यवस्थित किया।[24] कोएनिम्सबर्गर तथा सहयोगियों की उष्णकटिबंधीय-आवास पुस्तिका सूर्य-पथ, छायाकरण तथा वायु-संचार पर आधारित डिज़ाइन-नियम प्रस्तुत करती है।[31] भारतीय संदर्भ में बंसल तथा मिंके ने देश को गर्म-शुष्क, गर्म-आर्द्र, समशीतोष्ण, शीत और मिश्रित जलवायु-क्षेत्रों में बाँटा, [25] जबकि राष्ट्रीय

भवन संहिता प्राकृतिक प्रकाश और संवातन के न्यूनतम मानक निर्धारित करती है।[32] इन स्रोतों का महत्त्व यह है कि वे एक वस्तुनिष्ठ मापदंड देते हैं जिससे वास्तु-नियमों के जलवायवीय तर्क की जाँच हो सकती है। इनमें से किसी भी स्रोत में अग्निवास या दिशा-शूल का कोई उल्लेख नहीं है, और यह अनुपस्थिति स्वयं एक निष्कर्ष है: भवन-विज्ञान के मानक साहित्य में ये मुहूर्तगत नियम किसी डिजाइन-चर के रूप में नहीं आते।

6.3 स्वास्थ्य एवं सुरक्षा साहित्य का सार

ठोस ईंधन से खाना पकाने के कारण घर के भीतर प्रदूषण पर स्मिथ तथा सहयोगियों की समीक्षा श्वसन-रोगों तथा अन्य स्वास्थ्य-जोखिमों के साथ इसका संबंध प्रस्तुत करती है।[26] भारत में घरेलू PM2.5 सांद्रता के मापन और मॉडलिंग पर बालकृष्णन तथा सहयोगियों का कार्य दिखाता है कि ठोस-ईंधन प्रयोग करने वाले घरों में वायु-प्रदूषण का स्तर अधिक होता है।[27] राष्ट्रीय भवन संहिता का अग्नि-सुरक्षा भाग भवन-डिजाइन में अग्नि-जोखिम के नियंत्रण पर औपचारिक मानक देता है।[33] इन स्रोतों का उपयोग पाकशाला-स्थान के वास्तु-नियम का मूल्यांकन करने में है: पाकशाला की स्थिति से अधिक निर्णायक कारक संवातन, ईंधन का प्रकार, चिमनी या निकास-व्यवस्था तथा अग्नि-सुरक्षा-उपाय पाए जाते हैं।

6.4 मनोवैज्ञानिक एवं तुलनात्मक साहित्य का सार

निकर्सन की समीक्षा दर्शाती है कि मनुष्य अपनी पूर्व-मान्यता की पुष्टि करने वाले प्रमाणों को अधिक महत्त्व देता है (पुष्टि-पक्षपात)।[28] लैंगर के प्रसिद्ध प्रयोग दिखाते हैं कि अनिश्चित परिस्थितियों में लोग नियंत्रण का भ्रम पाल लेते हैं।[34] वाइस का अध्ययन अंधविश्वासों को सीखे हुए व्यवहार और प्रबलन के संदर्भ में समझाता है।[35] रिज़न का शोध बताता है कि लोग तर्क-स्तर पर अस्वीकार किए गए अंधविश्वासों के प्रति भी सहज रूप से झुक जाते हैं।[29] मालिनोव्स्की का क्लासिक विश्लेषण बताता है कि जहाँ परिणाम अनिश्चित और जोखिम भरे होते हैं, वहाँ जादू-अनुष्ठान अधिक पनपते हैं।[36] तुलनात्मक दृष्टि से, चीनी फ़ेंग-शुई पर हुए अध्ययन भी इसी प्रकार भवन-परंपरा और विश्वास के संबंध को दिखाते हैं: माक तथा एन.जी. ने वास्तुकारों की धारणा का सर्वेक्षण किया, जो दर्शाता है कि पेशेवर समुदाय में भी ऐसी परंपराओं के प्रति मिश्रित दृष्टिकोण पाया जाता है, [30] और ब्रून की पुस्तक फ़ेंग-शुई के ऐतिहासिक विकास को समझाती है।[37]

7. विश्लेषणात्मक अध्ययन: तुलनात्मक आँकड़े

7.1 अग्निवास का 210-संयोग विश्लेषण

अग्निवास-सूत्र में तिथि 1 से 30 तक तथा वार 1 से 7 तक चलते हैं, अतः कुल $30 \times 7 = 210$ संभावित युग्म बनते हैं। प्रत्येक युग्म के लिए (तिथि + वार + 1) का चार से शेषफल निकाला गया। परिणाम सारणी 2 में दिया गया है। शेषफल 0 के 53 तथा शेषफल 3 के 52 युग्म हैं, जिनसे 'पृथ्वी' वाले संयोग 105 बनते हैं (50.0%); शेषफल 1 से 'आकाश' के 53 संयोग (25.2%) और शेषफल 2 से 'पाताल' के 52 संयोग (24.8%) बनते हैं।

सारणी 2: अग्निवास, दिशा-शूल एवं सूर्य-पथ की मौलिक गणनाएँ

मापदंड	परिणाम	निष्कर्ष
अग्निवास – पृथ्वी (शेष 0 या 3)	105 / 210 = 50.0%	सुखद/अनुकूल मानी गई स्थिति आधे संयोगों में
अग्निवास – आकाश (शेष 1)	53 / 210 = 25.2%	पीड़ादायक मानी गई स्थिति
अग्निवास – पाताल (शेष 2)	52 / 210 = 24.8%	धन-हानिकारक मानी गई स्थिति
दिशा-शूल: दिशा के निषिद्ध होने की प्रायिकता	पूर्व/उत्तर/पश्चिम 28.6% प्रत्येक; दक्षिण 14.3%; औसत 25%	प्रतिदिन ठीक एक प्रमुख दिशा निषिद्ध
संयुक्त: अग्निवास पृथ्वी + दिशा खुली	पूर्व 36.2%; उत्तर 36.2%; दक्षिण 42.4%; पश्चिम 35.2%	प्रति माह लगभग 11-13 दिन दोनों शर्तें पूरी
सूर्योदय-दिगंश (उत्तर से), ग्रीष्म / शीत अयनांत: गाज़ियाबाद क्षेत्र (28.7° उ.)	63.0° / 117.0°	पूर्व से ±27° का ऋतुनिष्ठ विचलन
सूर्योदय-दिगंश: चेन्नई (13.1° उ.)	65.9° / 114.1°	ऋतु-अंतर लगभग 48°
सूर्योदय-दिगंश: मुंबई (19.1° उ.)	65.1° / 114.9°	ऋतु-अंतर लगभग 50°
सूर्योदय-दिगंश: श्रीनगर (34.1° उ.)	61.3° / 118.7°	ऋतु-अंतर लगभग 57°
मध्याह्न सूर्य-उन्नतांश, गाज़ियाबाद क्षेत्र: ग्रीष्म / विषुव / शीत	84.8° / 61.3° / 37.9°	शीत में निचले कोण की धूप

स्रोत: लेखक की गणना। अग्निवास: (तिथि + वार + 1) ÷ 4 का शेषफल, तिथि 1-30, वार 1-7; सूर्योदय-दिगंश: $\cos A = \sin \delta / \cos \phi$

इस परिणाम से तीन निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम, वितरण लगभग आदर्श समान है, क्योंकि चार और सात परस्पर अभाज्य हैं और तीस को चार से भाग देने पर शेष 2 आता है; अतः किसी भी निश्चित वार पर तीसों तिथियों में प्रत्येक शेषफल 7 या 8 बार आता है। द्वितीय, प्रत्येक वार में 30 में से 14 से 16 तिथियाँ 'पृथ्वी' वाली आती हैं (रवि 16, सोम 15, मंगल 14, बुध 15, गुरु 16, शुक्र 15, शनि 14), अतः किसी भी वार को पूरी तरह वर्ज्य नहीं ठहराया जा सकता। तृतीय, इस सूत्र में किसी वास्तविक भौतिक चर का प्रवेश नहीं है; वह समय को चार-स्थिति वाले चक्र में बाँटने का अंकगणितीय अनुबंध है। इसलिए मौसम-पूर्वानुमान की भाँति किसी भौतिक परिणाम का पूर्वानुमान देने वाला गुण इस सूत्र की संरचना में स्वतः नहीं मिलता; उसका कोई व्यावहारिक मूल्य हो तो वह अनुभवजन्य परीक्षण से ही सिद्ध होगा।

व्यावहारिक निहितार्थ यह है कि चूँकि लगभग आधे संयोग शुभ हैं, इसलिए निर्माता को किसी माह में प्रायः अनेक विकल्प मिल जाते हैं और अग्निवास की शर्त निर्माण-कार्यक्रम को सामान्यतः असंभव नहीं बनाती। यह विश्लेषण एक सीमा से बंधा है: वास्तविक पंचांग में तिथि-क्षय/वृद्धि होती है और तिथि-वार का मेल इस पूर्ण-चक्र की कल्पना से थोड़ा भिन्न हो सकता है; इसलिए ये आँकड़े सैद्धांतिक वितरण हैं, किसी पंचांग-वर्ष का प्रेक्षित वितरण नहीं।

7.2 दिशा-शूल की प्रायिकता

पूर्व में दो (सोम, शनि), उत्तर में दो (मंगल, बुध), पश्चिम में दो (शुक्र, रवि) तथा दक्षिण में एक (गुरु) वार निषिद्ध है। अतः किसी निश्चित दिशा का निषिद्ध होना पूर्व-उत्तर-पश्चिम के लिए 2/7 (28.6%) तथा दक्षिण के लिए 1/7 (14.3%) है; औसत प्रायिकता 25% है। दक्षिण दिशा सबसे कम बाधित है, जो वास्तु-परंपरा में यम-दिशा के साथ जुड़ी सावधानी के प्रकाश में रोचक विरोधाभास है: यात्रा-नियम में दक्षिण सबसे अधिक खुला है, जबकि वास्तु के अनेक नियम दक्षिण-निर्माण में सावधानी सुझाते हैं।

7.3 सूर्य-पथ की गणना और दिशा-नियम का जलवायवीय तर्क

सूर्योदय-दिगंश की गणना सारणी 2 में दी गई है। गाज़ियाबाद-क्षेत्र (अक्षांश लगभग 28.7° उ.) में ग्रीष्म-अयनांत पर सूर्योदय उत्तर से लगभग 63° पर, अर्थात् पूर्व से 27° उत्तर की ओर होता है और शीत-अयनांत पर लगभग 117° पर, अर्थात् पूर्व से 27° दक्षिण की ओर। मध्याह्न में सूर्य का उन्नतांश ग्रीष्म में लगभग 84.8°, विषुव पर 61.3° तथा शीत में 37.9° रहता है। इसका अर्थ है कि शीत-ऋतु में सूर्य-किरणें निचले कोण से दक्षिण-पूर्वी भाग पर आती हैं, जबकि ग्रीष्म में पूर्व-पश्चिम की दीवारें ऊर्ध्वाधर रूप से अधिक ताप ग्रहण करती हैं और दक्षिण की दीवारें छाया में रह जाती हैं। इन संख्याओं से निम्न वास्तु-नियमों का आंशिक तर्क निकलता है: पूर्व तथा ईशान की ओर खुलापन प्रातःकालीन हल्की धूप और प्रकाश का लाभ देता है; पश्चिम की ओर कम खिड़कियाँ अपराह्न की तीव्र गर्मी से बचाती हैं; और दक्षिण-पूर्वी भाग शीत-ऋतु की धूप पाकर सुबह की गतिविधियों (पाक-कर्म) के लिए सुविधाजनक रहता है। भारतीय जलवायु-क्षेत्रों के अनुसार इष्टतम दिशा बदलती है, [25,38] इसलिए ये तर्क 'सार्वभौमिक नियम' नहीं, 'क्षेत्र-विशिष्ट संभाव्यता' के रूप में ही मान्य हैं।

इसी संख्यात्मक अध्ययन में चेन्नई, मुंबई तथा श्रीनगर के साथ तुलना (सारणी 2) दिखाती है कि भारत के अक्षांश-विस्तार में सूर्योदय-दिगंश का परिवर्तन ग्रीष्म-शीत के बीच लगभग 48°–57° के बीच रहता है; अर्थात् 'पूर्व में सूर्योदय' एक ऋतुनिष्ठ औसत है, कोई स्थिर दिशा नहीं। सौर-विकिरण के भारतीय आँकड़े भी क्षेत्र के अनुसार भिन्नता दर्शाते हैं। [39] अतः 'पूर्वाभिमुख द्वार' का विचार सूर्य-पथ से अंशतः समर्थित है, पर किसी स्थान-विशेष के लिए उसकी इष्टता अलग से मापी जानी चाहिए।

7.4 पाकशाला का आग्नेय-स्थान: तर्क की परीक्षा

आग्नेय दिशा के देवता अग्नि हैं, अतः अनेक ग्रंथ पाकशाला या अग्नि-कर्म का स्थान इसी कोण में बताते हैं। नाम-साम्य से परे व्यावहारिक तर्क ये हो सकते हैं: (क) प्रातःकाल की पूर्वी धूप से रसोई का प्राकृतिक प्रकाश और जीवाणुरोधी-प्रभाव; (ख) कई क्षेत्रों में ग्रीष्म-ऋतु में पश्चिम या दक्षिण-पश्चिम से बहने वाली हवा धुएँ को रसोई से घर के मुख्य कक्षों के विपरीत भाग की ओर ले जा सकती है; (ग) पूर्वी-दक्षिणी कोण में अग्नि-स्रोत रखने से शयन-कक्ष तथा पूजा-स्थल से उसकी दूरी बनी रहती है। परंतु स्वास्थ्य-साहित्य का केंद्रीय निष्कर्ष यह है कि वायु-प्रदूषण का निर्णायक कारक ईंधन का प्रकार और संवातन है, स्थान-दिशा नहीं। [26,27] पवन-दिशा भारतीय जलवायु में ऋतु और क्षेत्र के अनुसार बदलती है, अतः आग्नेय-पाकशाला का तर्क केवल सीमित परिस्थितियों में ही सही हो सकता है। इसका संभावित व्यावहारिक निष्कर्ष यह है कि आधुनिक रसोई में चिमनी, निकास-पंखा और स्वच्छ ईंधन आग्नेय-स्थान से कहीं अधिक प्रभावी स्वास्थ्य-सुरक्षा देते हैं।

7.5 अग्निवास और दिशा-शूल का संयुक्त विश्लेषण

व्यवहार में निर्माता केवल एक नियम नहीं देखता; वह एक ही दिन अग्निवास और दिशा-शूल दोनों की शर्त पूरी करना चाहता है। इस संयुक्त स्थिति की गणना के लिए 210 संयोगों में से उन संयोगों को गिना गया जिनमें अग्नि का वास पृथ्वी पर हो (शेषफल 0 या 3) और साथ ही निर्दिष्ट दिशा उस वार को शूल-युक्त न हो। परिणाम इस प्रकार रहे: पूर्व दिशा के लिए 76 संयोग (36.2%), उत्तर दिशा के लिए 76 (36.2%), दक्षिण दिशा के लिए 89 (42.4%) तथा पश्चिम दिशा के लिए 74 (35.2%)। इन्हें तीस दिन के एक सामान्य महीने पर आनुपातिक रूप से बदलें तो पूर्व और उत्तर के लिए लगभग 10.9 दिन, दक्षिण के लिए 12.7 दिन तथा पश्चिम के लिए 10.6 दिन प्रति माह दोनों शर्तें एक साथ पूरी करते हैं।

इस गणना के दो निहितार्थ हैं। पहला, दोनों नियमों को एक साथ लागू करने पर भी एक माह में लगभग 11 से 13 दिन उपलब्ध रहते हैं, अर्थात् निर्माण का कार्यक्रम पूरी तरह बाधित नहीं होता; किंतु एक विशेष वार, विशेष तिथि और विशेष दिशा की त्रिविध माँग (जैसे परिवार की सुविधा का सप्ताहांत तथा विशेष नक्षत्र जोड़ देने पर) संख्या को तेजी से घटा देती है, जिससे प्रतीक्षा-अवधि लंबी हो सकती है। दूसरा, यदि अग्निवास और दिशा-शूल स्वतंत्र होते तो संयुक्त प्रायिकता लगभग $50\% \times 75\% = 37.5\%$ होती; प्रेक्षित मान 35.2% से 42.4% के बीच हैं, जो इस सरल अपेक्षा के निकट हैं। अतः दोनों नियम गणितीय रूप से लगभग अप्रभावित (independent-जैसे) व्यवहार करते हैं, और एक के आधार पर दूसरे का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यह निष्कर्ष भी केवल सैद्धांतिक वितरण का है; वास्तविक पंचांग तथा नक्षत्र-लग्न जैसी अतिरिक्त शर्तें जुड़ते ही उपलब्ध दिनों की संख्या बदल जाती है।

7.6 मुहूर्त-विलंब की संभावित लागत: एक रूपरेखात्मक आकलन

निर्माण-कार्य में समय का आर्थिक मूल्य होता है। यदि कोई निर्माता मुहूर्त की प्रतीक्षा में कार्य टालता है, तो ऋण पर ब्याज, किराया, सामग्री-मूल्य-वृद्धि और मौसम-जोखिम जैसी लागतें बढ़ सकती हैं। यहाँ कोई वास्तविक लागत-आँकड़ा प्रस्तुत नहीं किया जा रहा, क्योंकि प्रमाणित स्थानीय आँकड़े इस पत्र के स्रोतों में उपलब्ध नहीं थे; केवल यह रूपरेखा दी जा रही है कि भावी शोध में किन चरों को मापा जाना चाहिए। एक प्रस्तावित मापन-ढाँचे में निर्भर चर (dependent variables) के रूप में निर्माण-आरंभ में विलंब (दिनों में), कुल निर्माण-अवधि, लागत-वृद्धि का प्रतिशत, निर्माण-स्थल की दुर्घटना-दर तथा निवास के प्रथम वर्ष में संतुष्टि-स्कोर लिए जा सकते हैं; स्वतंत्र चर के रूप में अग्निवास की स्थिति (पृथ्वी/आकाश/पाताल), दिशा-शूल का पालन (हाँ/नहीं), तथा नियंत्रण-चर के रूप में जलवायु-क्षेत्र,[25] भवन का प्रकार, ठेकेदार का अनुभव और बजट रखे जा सकते हैं। ऐसा ढाँचा ही यह तय कर पाएगा कि नियम का कोई मापनीय प्रभाव है या नहीं।

7.7 शास्त्रीय पाठ बनाम लोकप्रिय वास्तु-व्यवहार: अंतर-विश्लेषण

इस अध्ययन में तीन प्रकार के अंतर चिह्नित किए गए। प्रथम, प्रयोग-क्षेत्र का अंतर: अग्निवास मूलतः होम-कर्म के लिए है, किंतु लोकप्रिय व्यवहार में उसे निर्माण-आरंभ की तिथि के लिए लागू किया जाता है।[9,11] द्वितीय, निरपेक्षता का अंतर: शास्त्रों में परिहार और अपवादों की व्यवस्था मिलती है, जबकि लोकप्रिय परामर्श में नियम प्रायः निरपेक्ष रूप में बताए जाते हैं।[8] तृतीय, स्रोत-सत्यापन का अंतर: जहाँ अकादमिक स्रोत ग्रंथ, अध्याय और पाठ-भेद का उल्लेख करते हैं, वहाँ लोकप्रिय सामग्री अक्सर बिना स्रोत के 'वास्तु-सिद्धांत' के नाम पर कथन करती है। बाफ़ना की आलोचना भी यही संकेत देती है कि शास्त्रीय आरेख और

वास्तविक भवन के बीच संबंध को सीधा मान लेना उचित नहीं है।[12] इन अंतरों को स्वीकार करना किसी परंपरा का अपमान नहीं, उसकी पाठ-निष्ठ समझ का प्रथम चरण है।

8. बहु-दृष्टिकोणीय विश्लेषण

8.1 शास्त्रीय/आगमिक दृष्टिकोण

शास्त्रीय दृष्टि से अग्निवास और दिशा-शूल काल-शुद्धि के अंग हैं, और वास्तु-कर्म वैदिक यज्ञ-परंपरा का स्थापत्य-विस्तार है। मयमत जैसे ग्रंथ भूमि-परीक्षा, दिक्-निर्धारण और पद-विन्यास का विस्तृत विधान देते हैं,[5] और समरांगणसूत्रधार में वास्तु-विद्या अनेक शिल्पीय-तकनीकी सूक्ष्मताओं के साथ मिलती है।[4] मानसार भवन के अंग-प्रत्यंग के नाप-जोख को प्रमुखता देता है।[6] शुक्ल का वास्तुशास्त्र-अध्ययन तथा आचार्य का स्थापत्य-शब्दकोश इस ज्ञान के पारिभाषिक आधार को समझने में सहायक हैं।[40,41] इस दृष्टि की शक्ति यह है कि वह ज्ञान को सांस्कृतिक संदर्भ में सुरक्षित रखती है; उसकी सीमा यह है कि मुहूर्तगत फल-कथन का अनुभवजन्य परीक्षण उसके भीतर से उपलब्ध नहीं होता। साथ ही यह दृष्टि स्वयं पुरुषार्थ को प्रमुखता देती है। गीता कर्म की सिद्धि के पाँच कारण गिनाती है, जिनमें दैव मात्र एक है:[13]

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥ (गीता 18.14)

इस श्लोक का सम्यक पाठ यह है कि सफल भवन-निर्माण में अधिष्ठान (भूमि और नींव), कर्ता (निर्माता), करण (उपकरण-सामग्री), चेष्टा (प्रयास) तथा दैव — सभी की भूमिका है; दैव को एकमात्र या प्रधान कारक मानना श्लोक की मूल योजना का अतिक्रमण होगा। इसी भाव को नीति-वचन भी प्रकट करता है कि कार्य उद्यम से सिद्ध होते हैं, केवल मनोरथ से नहीं:

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः। (प्रचलित नीति-वचन)

8.2 स्थापत्य-इतिहास का दृष्टिकोण

इतिहासकार वास्तु को केवल नियमों की सूची नहीं, परंपरा और व्यवहार की परस्पर क्रिया मानते हैं। रामराज (1834) का क्लासिक निबंध दक्षिण भारत की शिल्प-परंपरा के नियमों को अंग्रेजी पाठकों तक पहुँचाने वाला प्रारंभिक कार्य है।[42] माइकल का मंदिर-स्थापत्य का परिचय अर्थ और रूप के संबंध को स्पष्ट करता है।[43] इस दृष्टि का निष्कर्ष है कि ऐतिहासिक वास्तुकार स्थल, जलवायु, सामग्री और संरक्षक की आवश्यकताओं के साथ समझौता करते थे;[22] अर्थात् शास्त्र अंतिम और एकमात्र निर्णायक नहीं था।

8.3 जलवायवीय एवं अभियांत्रिकीय दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण में मूल्यांकन के मापदंड तापमान, प्रकाश, वायु-वेग, ऊष्मा-भार, आग-सुरक्षा और संरचनात्मक सुरक्षा हैं।[23,24,32,33] इन मापदंडों पर दिशा का महत्व वास्तविक है, किंतु वह जलवायु-क्षेत्र और स्थल पर निर्भर है। अग्निवास या दिशा-शूल का न तो कोई ऊष्मीय, न संरचनात्मक और न अग्नि-सुरक्षा-संबंधी चर है। यदि किसी दिन, किसी तिथि-वार पर नींव का कंक्रीट डाला जाए, तो उसकी सामर्थ्य मिश्रण-अनुपात, जल-सीमेंट अनुपात, क्योरिंग और तापमान जैसे भौतिक चरों से

निर्धारित होती है, तिथि-वार से नहीं। यह कथन इस शोध की केंद्रीय अनुभवजन्य टिप्पणी है और उपलब्ध मानकों की संरचना से संगत है।

8.4 मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

मनोविज्ञान की दृष्टि से मुहूर्त-नियम तनाव और अनिश्चितता के घटाव का साधन हो सकते हैं। निर्माण जैसे बड़े, महंगे और अपरिवर्तनीय निवेश में जोखिम और अनिश्चितता अधिक होती है, इसलिए मालिनोव्स्की के विश्लेषण के अनुसार अनुष्ठान आत्मविश्वास और संयुक्त-उद्यम की भावना बढ़ाते हैं।[36] नियंत्रण का भ्रम निर्णय-लेने वाले को सुरक्षा का अनुभव देता है,[34] और बाद में, यदि कार्य सफल हुआ, तो पुष्टि-पक्षपात मुहूर्त की भूमिका को अतिरंजित कर देता है, जबकि विफलताओं को 'अपवाद' मान लिया जाता है।[28,35] इस प्रक्रिया से परंपरा का अनुभवजन्य 'स्व-सत्यापन' होता है, चाहे उसका कारणात्मक आधार हो या न हो। रिज़न का शोध यह भी स्पष्ट करता है कि तर्कसंगत रूप से संशयी लोग भी ऐसी मान्यताओं को सहज रूप से पूरी तरह छोड़ नहीं पाते।[29] यहाँ यह जोड़ना आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक लाभ वास्तविक हो सकता है, किंतु वह भौतिक-कारणत्व का प्रमाण नहीं है।

8.5 समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

समाजशास्त्रीय दृष्टि से नया घर संक्रमण का अवसर है: परिवार की सामाजिक स्थिति, पीढ़ियों का मिलन और पड़ोस की स्वीकृति सब इस अवसर से जुड़ते हैं। संस्कार और संस्कृति पर हिंदी-भाषा के समाजशास्त्रीय अध्ययन बताते हैं कि संस्कार-प्रक्रिया सांस्कृतिक मूल्यों के संचरण का साधन है,[14,15,19] और इस आधार पर कहा जा सकता है कि अग्निवास-शुद्ध गृह-प्रवेश-होम एक सामाजिक-सांस्कृतिक अनुष्ठान भी है, जो परिवार और समुदाय को जोड़ता है। यह निष्कर्ष इन अध्ययनों के शीर्षक-स्तरीय विषय-क्षेत्र पर आधारित है; वे सीधे वास्तु-मुहूर्त पर नहीं हैं, अतः उनका उपयोग केवल पृष्ठभूमि-चौखट के रूप में किया गया।

8.6 तुलनात्मक सांस्कृतिक दृष्टिकोण

चीनी फ़ेंग-शुई में भी दिशा, काल और भवन का संबंध पाया जाता है, और उसके अध्ययन में वास्तुकारों की धारणा का वही द्वैत दिखाई देता है — कुछ व्यावहारिक तत्त्वों की स्वीकृति, पर कारणात्मक दावों पर संशय।[30,37] यह समानता संकेत करती है कि भवन के साथ दिशा-विश्वास कई परंपराओं में उभरे हैं, और उनकी स्थायी लोकप्रियता को केवल किसी एक परंपरा की 'सत्यता' से नहीं, मानव-मनोविज्ञान और सामाजिक संरचना की समान आवश्यकताओं से भी समझा जा सकता है।

8.7 समीक्षित स्रोतों का विषयगत संश्लेषण

सारणी 1 के स्रोतों को एक साथ पढ़ने पर चार विषयगत निष्कर्ष उभरते हैं। पहला विषय 'पाठ और व्यवहार का अंतर' है, जिसे चक्रवर्ती, बाफ़ना तथा सचदेव-टिलोटसन तीनों अलग-अलग तरीकों से रेखांकित करते हैं।[8,12,22] दूसरा विषय 'जलवायु की प्राथमिकता' है, जिसे ओल्गे, गिवोनी, कोएनिग्सबर्गर तथा बंसल-मिंके के कार्य बार-बार पुष्ट करते हैं: दिशा का महत्त्व तब वास्तविक है जब वह जलवायु और सूर्य-पथ से जुड़ा हो।[23-25,31] तीसरा विषय 'स्वास्थ्य के निर्धारक कारक' है, जहाँ ईधन और संवातन दिशा से अधिक निर्णायक पाए जाते हैं।[26,27] चौथा विषय 'विश्वास की मनोवैज्ञानिक पुष्टि' है, जिसमें पुष्टि-पक्षपात, नियंत्रण का भ्रम और जोखिम में अनुष्ठान की प्रवृत्ति परंपराओं की स्थिरता का स्पष्टीकरण देते हैं।[28,34,36]

इन चार विषयों से एक संगत चित्र बनता है। शास्त्र में दिशा और काल की जो व्यवस्था है, उसका वह भाग जो भौतिक पर्यावरण से जुड़ता है, परीक्षण-योग्य है और आंशिक रूप से समर्थित है। जो भाग केवल ज्योतिषीय-काल-गणना पर टिका है, वह अब तक परीक्षित नहीं है। और दोनों के बीच की रेखा पहचानने में विफलता ही अतिदावों तथा अतिनकार का मूल कारण है।

8.8 तीन-स्तरीय निर्णय-मॉडल का प्रस्ताव

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर निर्माण-निर्णयों के लिए एक सरल तीन-स्तरीय मॉडल प्रस्तावित है। स्तर-1 'सुरक्षा और संरचना' है: नींव, सामग्री, अग्नि-सुरक्षा, संवातन और संरचनात्मक स्थिरता के निर्णय राष्ट्रीय भवन संहिता और अभियांत्रिकी-मानकों के अनुसार होंगे, और इन पर किसी मुहूर्त-नियम का अधिभार नहीं होगा।[32,33] स्तर-2 'पर्यावरणीय अनुकूलन' है: दिशा-संबंधी निर्णय (प्रकाश, छाया, वायु-संचार) स्थानीय सूर्य-पथ तथा जलवायु-डेटा से जाँचे जाएँगे; जहाँ वास्तु के नियम इनसे संगत हैं वहाँ उन्हें अपनाना सुविधाजनक है।[38] स्तर-3 'सांस्कृतिक-अनुष्ठानिक' है: अग्निवास, दिशा-शूल और मुहूर्त का पालन परिवार की आस्था और सामाजिक परंपरा के अनुसार हो, पर इसे स्तर-1 और स्तर-2 के निर्णयों को स्थगित करने का आधार न बनाया जाए। इस मॉडल का लाभ यह है कि वह किसी भी पक्ष की आस्था को ठुकराए बिना निर्णय-क्षेत्रों का स्पष्ट विभाजन करता है, और विशेषज्ञ तथा परिवार के बीच संवाद को तथ्य-आधारित बनाता है। यह मॉडल लेखक का प्रस्ताव है और इसका अनुभवजन्य परीक्षण शेष है।

8.9 अनुसंधान-मूल्य और अकादमिक योगदान

यह पत्र अकादमिक विमर्श में तीन योगदान करता है। एक, यह अग्निवास तथा दिशा-शूल की गणितीय संरचना का मात्रात्मक विवरण देता है, जो मुहूर्त-साहित्य में आम तौर पर कथात्मक रूप में ही मिलता है। दो, यह दिशा-शूल की ग्रह-दिक् संगति की आंशिक असंगति (सात में से तीन वार) को स्पष्ट करता है। तीन, यह वास्तु के दिशा-नियमों में जलवायवीय तर्क और मुहूर्तगत नियमों में प्रमाण-अभाव के बीच विश्लेषणात्मक भेद स्थापित करता है, जिससे आगे के शोध को परीक्षण-योग्य प्रश्न मिलते हैं। संस्कार और संस्कृति पर हिंदी-भाषा के समाजशास्त्रीय अध्ययनों के साथ इस पत्र का संवाद यह भी दिखाता है कि अनुष्ठानिक नियमों को सामाजिक कार्य की दृष्टि से देखना अकादमिक रूप से उपयोगी है।[14,15,19]

9. चर्चा: यथार्थ-उद्घाटन

इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि निर्माण-संबंधी प्रश्न तीन अलग स्तरों पर देखे जाने चाहिए, जिन्हें प्रायः एक में मिला दिया जाता है। पहला स्तर दिशा और जलवायु का है, जहाँ अनुभवजन्य मूल्यांकन संभव है और वास्तु के कुछ नियमों को सूर्य-पथ तथा संवातन के संदर्भ में आंशिक समर्थन मिलता है (H1 के पक्ष में)। दूसरा स्तर मुहूर्त और काल-शुद्धि का है, जहाँ अग्निवास और दिशा-शूल आते हैं, और जहाँ किसी भवन-परिणाम के साथ कारणात्मक संबंध का नियंत्रित साक्ष्य उपलब्ध साहित्य में नहीं मिलता (H2 के अनुरूप)। तीसरा स्तर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कार्य का है, जहाँ अनुष्ठान आश्वस्ति, एकता और सांस्कृतिक निरंतरता देता है (H3 के अनुरूप)। सारणी 1 के स्रोत और सारणी 2 की गणनाएँ तीनों स्तरों पर अलग-अलग निष्कर्ष की पुष्टि करती हैं।

यह भी महत्वपूर्ण है कि 'प्रमाण का अभाव' और 'अभाव का प्रमाण' एक नहीं हैं। उपलब्ध स्रोतों में अग्निवास या दिशा-शूल का भवन-परिणामों से नियंत्रित परीक्षण न मिलना यह नहीं सिद्ध करता कि ऐसा संबंध असंभव है; यह केवल बताता है कि वर्तमान में कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। विज्ञान का अनुशासन ऐसी स्थिति में अनिश्चयात्मक निर्णय (suspended judgment) और परीक्षण-योग्य प्रश्नों की रचना की माँग करता है। साथ ही, यह स्वीकार करना होगा कि इस पत्र के लेखन में नई डेटाबेस-खोज नहीं चलाई गई है; अतः 'साक्ष्य उपलब्ध नहीं' का अर्थ 'इस पत्र में समीक्षित स्रोतों में उपलब्ध नहीं' है, 'विश्व-साहित्य में कहीं नहीं' नहीं।

परिमाणात्मक रूप से, अग्निवास का आधा चक्र शुभ है और दिशा-शूल से प्रभावित दिशा केवल एक चौथाई समय बाधित है। इसलिए एक व्यावहारिक निर्माता के लिए 'मुहूर्त का पालन' अत्यंत महंगा नहीं है, और वह सांस्कृतिक अभ्यास के रूप में सुविधाजनक है। इसके विपरीत, जब इन नियमों के आधार पर निर्माण-कार्य महीनों तक टाला जाता है, या आर्थिक-सुरक्षा संबंधी निर्णय (जैसे ऋण-वितरण, मानसून-पूर्व कार्य-समय) मुहूर्त के अधीन किए जाते हैं, तब अनुष्ठान का सामाजिक लाभ वास्तविक लागत से टकरा सकता है। इस संतुलन का निर्णय निर्माता पर छोड़ना ही उचित है, और विशेषज्ञ का दायित्व यह है कि वह अनुष्ठानिक और अभियांत्रिकीय निर्णय को अलग-अलग स्पष्ट करे।

शास्त्र-परंपरा के प्रति सम्मान तथा वैज्ञानिक अनुशासन में विरोध नहीं है। जब शास्त्र स्वयं अनेक कारकों की बात करता है और पुरुषार्थ को महत्व देता है, तब आलोचनात्मक शोध उस परंपरा की उपेक्षा नहीं, उसकी उन्नत समझ का मार्ग है। चक्रवर्ती का यह निष्कर्ष कि समकालीन वास्तु अक्सर मूल पाठ से अलग हो जाता है, [8] यह भी दर्शाता है कि पाठ-आधारित आलोचना परंपरा की रक्षा में सहायक हो सकती है।

10. सीमाएँ

इस अध्ययन की प्रमुख सीमाएँ ये हैं। प्रथम, यह स्कोपिंग-प्रकार की आलोचनात्मक समीक्षा है और इसमें पंजीकृत, पुनरुत्पादनीय डेटाबेस-खोज नहीं की गई; अतः PRISMA प्रवाह-आरेख के आँकड़े नहीं दिए गए। द्वितीय, कुछ शास्त्रीय उद्धरण प्रचलित पाठ के आधार पर दिए गए हैं और प्रकाशन से पूर्व मूल संस्करण से मिलान आवश्यक है। तृतीय, 210-संयोग का विश्लेषण सैद्धांतिक है, वास्तविक पंचांग की तिथि-क्षय/वृद्धि को समाहित नहीं करता। चतुर्थ, खगोलीय गणना सरल सूत्र पर आधारित है और वायुमंडलीय अपवर्तन तथा स्थान की ऊँचाई जैसे सुधार छोड़ दिए गए हैं। पंचम, भारतीय भाषाओं में उपलब्ध निर्माण-मुहूर्त संबंधी स्थानीय प्रकाशनों का इस पत्र में व्यापक सर्वेक्षण नहीं हो सका। षष्ठ, संलग्न संदर्भ-सूची से केवल सीमित स्रोत ही समय-सीमा और विषय-शर्त पर पात्र थे, अतः उस सूची का उपयोग अत्यल्प रहा।

11. निष्कर्ष एवं भावी शोध हेतु सुझाव

अग्निवास और दिशा-शूल भारतीय निर्माण-परंपरा के सांस्कृतिक-अनुष्ठानिक अंग हैं। शास्त्रीय स्तर पर उनकी गणना-विधि सुपरिभाषित है, गणितीय स्तर पर वे समान-वितरण वाले चक्रीय नियम हैं, और अनुभवजन्य स्तर पर भवन-गुणवत्ता, सुरक्षा या स्वास्थ्य के साथ उनके कारणात्मक संबंध का समीक्षित साहित्य में कोई साक्ष्य नहीं मिलता। इसके विपरीत, वास्तु के कुछ दिशा-संबंधी नियमों के लिए सूर्य-पथ, प्रकाश और संवातन के आधार पर आंशिक तर्क उपलब्ध है, परंतु वह जलवायु-क्षेत्र पर निर्भर है

और स्थल-आधारित मापन से जाँचा जाना चाहिए। इन नियमों की निरंतरता का स्पष्टीकरण मुख्यतः सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कार्यों में मिलता है।

व्यावहारिक अनुशंसाएँ इस प्रकार हैं: (1) भवन के संरचनात्मक, अग्नि-सुरक्षा और संवातन संबंधी निर्णय राष्ट्रीय भवन संहिता तथा जलवायु-आधारित डिजाइन के अनुसार लिए जाएँ; [32,33] (2) अनुष्ठान और मुहूर्त का पालन करने वाले निर्माता उसे सांस्कृतिक अभ्यास की तरह अपनाएँ और उसके कारण सुरक्षा-संबंधी निर्णय न टालें; (3) वास्तु-सलाहकार शास्त्रीय स्रोत, पाठ-भेद और अपने निष्कर्ष की प्रामाणिकता स्पष्ट रूप से बताएँ; (4) शिक्षण-संस्थाओं में भारतीय स्थापत्य-परंपरा को ऐतिहासिक-समीक्षात्मक दृष्टि से पढ़ाया जाए।

भावी शोध के लिए परीक्षण-योग्य प्रस्ताव ये हैं: (क) बड़े नमूने पर सर्वेक्षण, जिसमें गृह-प्रवेश और निर्माण-आरंभ की तिथि के अग्निवास/दिशा-शूल-स्थिति को निर्माण-देरी, दुर्घटना-दर और लागत-वृद्धि जैसे मापनीय परिणामों से जोड़ा जाए; (ख) पूर्व-पंजीकृत अर्ध-प्रयोगात्मक अध्ययन, जिसमें मुहूर्त-पालन करने तथा न करने वाले समूहों की तुलना हो और पुष्टि-पक्षपात को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाए; (ग) आग्नेय बनाम अन्य दिशा की पाकशाला में वास्तविक वायु-गुणवत्ता और तापमान का माप, ईंधन-प्रकार को नियंत्रित करते हुए; (घ) शास्त्रीय ग्रंथों के पाठ-भेदों का आलोचनात्मक संस्करण-तुलना; (ङ) अनुष्ठान के मानसिक-सामाजिक प्रभावों का गुणात्मक अध्ययन। ऐसे अध्ययन परंपरा के सम्मान और विज्ञान की कठोरता को एक ही मंच पर ला सकते हैं।

संदर्भ (References)

1. Müller FM, editor. ऋग्वेद-संहिता सायणाचार्यभाष्यसंहिता [R̥gveda-Saṁhitā with the commentary of Sāyaṇa]. 6 vols. London: W.H. Allen; 1849–1874.
2. मत्स्यपुराणम् [Matsyapurāṇam]. Pune: Ānandāśrama Sanskrit Series no. 54; 1907.
3. Dvivedī S, editor. ब्राह्मसंहिता, भट्टोत्पलविवृतिसंहिता [Varāhamihira: Br̥hatsaṁhitā with the commentary of Bhaṭṭotpala]. Benares: Vizianagram Sanskrit Series; 1895–1897.
4. Śāstrī TG, editor. भोजदेवः समरांगणसूत्रधारः [Bhojadeva: Samarāṅgaṇasūtradhāra]. 2 vols. Baroda: Oriental Institute (Gaekwad's Oriental Series nos. 25, 32); 1924–1925.
5. Dagens B, translator. Mayamata: an Indian treatise on housing architecture and iconography (original text: मयमतम् [Mayamatam]). New Delhi: Indira Gandhi National Centre for the Arts and Motilal Banarsidass; 1994.
6. Acharya PK. Architecture of Manasara (original text: मानसार [Mānasāra]). London: Oxford University Press; 1934.
7. Kramrisch S. The Hindu temple. 2 vols. Calcutta: University of Calcutta; 1946.
8. Chakrabarti V. Indian architectural theory: contemporary uses of Vastu Vidya. Richmond (UK): Curzon Press; 1998.

9. Rāma Daivajña. मुहूर्तचिन्तामणिः, पीयूषधारा-टीकासहितः [Muhūrtacintāmaṇi with the Pīyūṣadhārā commentary]. Varanasi: Chaukhamba; [प्रयुक्त संस्करण का वर्ष सत्यापित कर जोड़ें].
10. Pingree D. Jyotiḥśāstra: astral and mathematical literature. Wiesbaden: Otto Harrassowitz; 1981. (A history of Indian literature; vol. 6, fasc. 4).
11. Kane PV. History of Dharmaśāstra: ancient and mediaeval religious and civil law. Vol. 2, part 2. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute; 1941.
12. Bafna S. On the idea of the mandala as a governing device in Indian architectural tradition. J Soc Archit Hist. 2000;59(1):26-49.
13. श्रीमद्भगवद्गीता [Śrīmadbhagavadgītā]. Gorakhpur: Gita Press; [प्रयुक्त संस्करण का वर्ष सत्यापित कर जोड़ें].
14. Ahluwalia PS. संस्कार और संस्कृति: समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन. शब्दसागर. 2023;17-25.
15. Ahluwalia PS. भाषा और संस्कृति के विकास में संस्कारों का महत्व: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. शब्दसागर. 2024;1-8.
16. Page MJ, McKenzie JE, Bossuyt PM, Boutron I, Hoffmann TC, Mulrow CD, et al. The PRISMA 2020 statement: an updated guideline for reporting systematic reviews. BMJ. 2021;372:n71.
17. Tricco AC, Lillie E, Zarin W, O'Brien KK, Colquhoun H, Levac D, et al. PRISMA extension for scoping reviews (PRISMA-ScR): checklist and explanation. Ann Intern Med. 2018;169(7):467-73.
18. Arksey H, O'Malley L. Scoping studies: towards a methodological framework. Int J Soc Res Methodol. 2005;8(1):19-32.
19. Ahluwalia PS. भाषा, संस्कार और संस्कृति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण. शब्दसागर. 2023;35-41.
20. Ahluwalia PS. Ethical issues in social science research. Shodh Patra: Int J Multidiscip Stud. 2024;1-8.
21. Ahluwalia PS. Plagiarism: detection techniques and tools. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024;1-11.
22. Sachdev V, Tillotson G. Building Jaipur: the making of an Indian city. London: Reaktion Books; 2002.
23. Olgyay V. Design with climate: bioclimatic approach to architectural regionalism. Princeton (NJ): Princeton University Press; 1963.
24. Givoni B. Man, climate and architecture. London: Elsevier; 1969.
25. Bansal NK, Minke G. Climatic zones and rural housing in India. Jülich: Kernforschungsanlage Jülich; 1988.
26. Smith KR, Mehta S, Maeusezahl M. Indoor air pollution from household use of solid fuels. In: Ezzati M, Lopez AD, Rodgers A, Murray CJL, editors. Comparative quantification of health risks: global and regional burden of disease attributable to selected major risk factors. Vol. 2. Geneva: World Health Organization; 2004. p. 1435-93.
27. Balakrishnan K, Ghosh S, Ganguli B, Sambandam S, Bruce N, Barnes DF, et al. State and national household concentrations of PM_{2.5} from solid cooking fuel use: results from measurements and modeling in India for estimation of the global burden of disease. Environ Health. 2013;12:77.

28. Nickerson RS. Confirmation bias: a ubiquitous phenomenon in many guises. *Rev Gen Psychol.* 1998;2(2):175-220.
29. Risen JL. Believing what we do not believe: acquiescence to superstitious beliefs and other powerful intuitions. *Psychol Rev.* 2016;123(2):182-207.
30. Mak MY, Ng ST. The art and science of Feng Shui—a study on architects' perception. *Build Environ.* 2005;40(3):427-34.
31. Koenigsberger OH, Ingersoll TG, Mayhew A, Szokolay SV. *Manual of tropical housing and building: climatic design.* London: Longman; 1973.
32. Bureau of Indian Standards. *National Building Code of India 2016. Vol. 2, Part 8: Building services, Section 1: Lighting and natural ventilation.* New Delhi: Bureau of Indian Standards; 2016.
33. Bureau of Indian Standards. *National Building Code of India 2016. Vol. 1, Part 4: Fire and life safety.* New Delhi: Bureau of Indian Standards; 2016.
34. Langer EJ. The illusion of control. *J Pers Soc Psychol.* 1975;32(2):311-28.
35. Vyse SA. *Believing in magic: the psychology of superstition.* New York: Oxford University Press; 1997.
36. Malinowski B. *Magic, science and religion and other essays.* Boston: Beacon Press; 1948.
37. Bruun O. *An introduction to Feng Shui.* Cambridge: Cambridge University Press; 2008.
38. Nayak JK, Hazra R, Prajapati JA. *Manual on solar passive architecture.* New Delhi: Solar Energy Centre, Ministry of Non-Conventional Energy Sources; 1999.
39. Mani A. *Handbook of solar radiation data for India.* New Delhi: Allied Publishers; 1980.
40. Shukla DN. *Vastu-sastra: Hindu science of architecture. Vol. 1.* Chandigarh: Panjab University; 1960.
41. Acharya PK. *A dictionary of Hindu architecture.* London: Oxford University Press; 1927.
42. Rāz R. *Essay on the architecture of the Hindus.* London: Oriental Translation Fund; 1834.
43. Michell G. *The Hindu temple: an introduction to its meaning and forms.* London: Paul Elek; 1977.